सत्यांश

देश के पाँच राज्यों में इस समय चुनाव की प्रक्रिया चल रही है और इधर युगसेतु का प्रेम अंक प्रकाशित हो रहा है। चुनाव और प्रेम का क्या मेल! मेल है। प्रेम के लिए भी पात्र का चुनाव करना पड़ता है और चुनाव में उतरने के लिए दल, उम्मीदवार व क्षेत्र का चयन करना पड़ता है, जीतने-जिताने के लिए प्रेम प्रदर्शित करना पड़ता है। यह प्रेम राजनीतिक स्वार्थों के वशीभूत होकर किया-कराया जाता है, तथापि प्रेम का छोटा रूप यहाँ भी रहता है।

प्रेम और चुनाव -दोनों की बुनियाद लोकतांत्रिक मान्यताओं पर टिकी होती है। राजतंत्रीय शासन व्यवस्था में भी प्रेम-पात्र का चुनाव करना पड़ता था। कौन शासन चलाएगा, किसके परामर्श से चलाएगा और कौन-कौन लोग जिम्मेवारियों का निर्वाह कैसे करेंगे, यह सब चयन की प्रक्रिया से ही तय होता रहा है। वास्तव में जहाँ बहुत में से हमें कम की जरूरत होती है, वहाँ अपनाने या छाँटने के लिए चुनाव करना ही पड़ता है। चुनाव उपलब्ध विकल्पों में से ही होता है, तथापि चयन की उत्कृष्ट प्रक्रिया में उनको भी दृष्टि में रखा जाता है, जो सामने तो नहीं होते, लेकिन उपयोगिता के आधार पर मौजूद विकल्पों से कहीं बेहतर लगते हैं। अच्छी चयन प्रक्रिया में ऐसा प्रावधान भी होता है, लेकिन इसका इस्तेमाल अपवादस्वरूप होता है और कुछ बार इसका दुरूपयोग भी।

लोकतांत्रिक चुनाव में मौजूद विकल्पों के बाहर से चुनने का प्रावधान नहीं है। हालाँकि नागरिकों को चुनाव लड़ने और पार्टियों को बाहर से भी प्रत्याशी बनाने का अधिकार है। इसके पीछे का कारण यह है कि सामने उपस्थित विकल्पों में दाव-पेंच, घात-प्रतिघात एवं कुटिलता-कुशलता का खेल चल रहा होता है, व्यापक जन भागीदारी होती है, इसलिए प्रक्रिया को सुव्यवस्थित चलाने के लिए वैधानिक नियमों की सीमा बनानी पड़ती है। इसके बावजूद चुनावों में धन-बल, बाहुबल, छल-छद्म का खूब प्रयोग होता है, जिसके चलते ऐसे लोग भी चुन लिए जाते हैं, जो जनमानस की भावनाओं के अनुरूप फिट नहीं बैठते। फिर भी लोकतंत्र की नजाकत को देखते हुए कहा जा सकता है कि सबको लोक के पास जाने का अधिकार है। अंतिम फैसला जनता का हो, लेकिन यह फैसला जोर-जबर्दस्ती, प्रलोभन और बहकावे में आकर न किया जाए, यह जरूरी है।

प्रेम के मामले में भी चुनाव का सार्वकालिक महत्त्व रहा है। यहाँ हम उस प्रेम की बात नहीं कर रहे, जो अपनी चरमावस्था में सबके प्रति यानी सर्वव्यापक होता है, लेकिन ऐसे प्रेम में भी भिन्न-भिन्न लोगों से अपनी आवश्यकता, उनके गुण-अवगुण के हिसाब से व्यवहार अलग-अलग होता है, अर्थात् एक समान प्रेम होते हुए भी सबके प्रति कार्य-व्यवहार भिन्न-भिन्न स्तरों पर अलग होता है। प्रेम के लिए चुनाव की आवश्यकता होती है, खासकर जहाँ स्त्री व पुरुष के बीच प्रेम की बात है। जब से जीवों का अस्तित्व उत्पन्न हुआ, इस प्रकार के प्रेम की जरूरत महसूस हुई।

संसार विचित्रताओं, विडम्बनाओं और विशेषताओं का आगार है। इसमें हमारे काम लायक और जो प्रेम लायक है, उसका चयन करना पड़ता है। प्रेम की असीमता को सीमित करना पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने से समाज का सुचारू संचालन मुश्किल होगा। यह व्यवस्था व्यक्ति विशेष को ध्यान में रखकर नहीं, वरन् संपूर्ण समाज को दृष्टिगत रखकर की गई है। कुछ व्यक्ति इस सीमा को लाँघेंगे, तो दूसरे का प्रेम-पात्र या तो नष्ट होगा या उन्हें उपलब्ध नहीं होगा। 'खुला रहकर प्रेम भटक जाता है, आवारा रहकर सुख जाता है, बंधन ही में वह सार्थक होता है, बँधकर ही पनपता है।' इसलिए ए.पी. परेश ने लिखा है कि 'कुछ लोग प्रार्थना करते हैं कि जिससे वे प्रेम करते हैं, उससे उनका विवाह हो। मैं केवल यही याचना करता हूँ कि जिससे मेरा विवाह हो, उसी से मैं प्रेम करूँ।' वस्तुतः प्रेम का यह मापदंड समाज को अव्यवस्था से बचाने के लिए बनाया गया है, इसको तोड़ने पर अराजकता और कलह-कोलाहल व अपराध बढ़ेंगे। यद्यपि मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर और व्यवस्था से व्यवस्थाहीनता की ओर आते-जाते रहना चाहता है। काम-वासना को व्यवस्थित करने के लिए विवाह है और व्यक्तित्व के विस्तृत विकास के लिए प्रेम। इसके बावजूद लगता है कि प्रेम व्यक्त और अव्यक्त से परे है। दुष्यंत कुमार के शब्दों में कहा जा सकता है-

बाहर आने दूँ, तो लोक लाज मर्यादा
भीतर रहने दूँ, तो घुटन सहज से ज्यादा
मेरा यह व्यक्तित्व, सिमटने पर आमादा।

अस्तु, जैसे चुनाव लोकतंत्र का पर्व है, वैसे ही प्रेम जीवन का व्रत। इसलिए दोनों का अवधान जबरन या थोपे हुए रूप में नहीं, वरन् निश्छल हृदय से सोच-समझकर उत्साहपूर्ण ढंग से करना ही उचित है। ☆